जॉन व्हाइट के सुदीर्घ लेख का यह दूसरा और अन्तिम हिस्सा है। पिछले अंक में छपे लेख में लेखक यह बुनियादी सवाल उठाते हैं कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या को निर्धारित करने का अधिकार किसके पास होना चाहिए। और वे कहते हैं कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के निर्धारण में किसी भी प्रकार के वर्गवाद से बचने की जरूरत है। इस अंक में प्रकाशित लेख में वे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के लक्ष्यों को लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुसार निर्धारित करने की पैरवी करते हुए कहते हैं कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या का आशय ही लोकतांत्रिक मूल्यों के आधार पर चुने जाने से है क्योंकि लोकतंत्र में यह जरूरी है कि सामाजिक रूप से महत्त्वपूर्ण निर्णयों में सभी की भागीदारी सुनिश्चित हो।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के उद्देश्यों का निर्धारण-II

जॉन व्हाइट

एक नई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की ओर

पिछले खण्ड में स्कूल के उद्देश्यों को तय करने में वर्गवाद से बचने की अब तक हुई कोशिशों का जायजा लिया गया- हमने पाया कि इन सब कोशिशों में कोई न कोई कमी रहती आई है। शिक्षार्थियों पर किसी भी प्रकार के उद्देश्यों के थोपे जाने का विरोध करके, उन्हें स्वयं अपना एजेण्डा तय करने की इजाजत देकर, वर्गीय उद्देश्यों के थोपे जाने से नहीं बचा जा सकता। वस्तुपरक उद्देश्यों की निशानदेही करने की उम्मीद में शैक्षिक 'विशेषज्ञता' और 'दक्षता' की दुहाई देना भी समस्याग्रस्त है। यही स्थिति बाजार की ताकतों और माता-पिता के अधिकारों के संदर्भ में या सभी समुदायों में आम राय बनाने के हवाले से भी पाई जाती है।

तो फिर, अगर हम अब भी वर्गवाद से बचना चाहते हों तो रास्ता क्या हो ? इन सब रास्तों में से आम राय बनाने की तलाश का रास्ता सबसे उपयुक्त लगता है। हमें एक बार फिर याद कर लेना चाहिए कि मुख्याध्यापकों और शिक्षकों के पेशेवर नियंत्रण के मुकाबले राष्ट्रीय पाठ्यचर्या को तरजीह दिए जाने का मुख्य कारण क्या है। वजह लोकतांत्रिक है- सामाजिक रूप से महत्त्वपूर्ण निर्णयों को तय करने में प्रत्येक नागरिक को हिस्सेदार होना चाहिए न कि नागरिकों के किसी एक समूह को (जैसे कि पेशेवर शिक्षक)- यह बात स्कूली शिक्षा के उद्देश्यों संबंधी निर्णयों पर भी लागू होती है। समाज के सभी समूहों-समुदायों को लेकर आम राय बनाने की कोशिश का मकसद है कि पूरी प्रक्रिया में अधिक से अधिक नागरिकों के विचारों को नुमाइंदगी मिल पाए। यानी, इस कोशिश का मूल, लोकतांत्रिक सिद्धान्तों से लगाव में है, और यह ठीक भी है।

लेकिन आम राय बनाने की कोशिश आखिर में लड़खड़ा जाती है। कारण- यह कोशिश एक हद से आगे नहीं जा पाती। यह सीमा उन अनुभव आधारित तथ्यों की है जो लोगों की नैतिक मूल्यों संबंधी परख और पसन्द से जुडे हैं- जिनके आधार पर तय होता है कि क्या किया जाए। लेकिन नीतिगत निर्णय लेने के लिए नैतिक मूल्यों संबंधी

लेखक परिचय : युनिवर्सिटी ऑफ लंदन के इन्स्टीट्यूट ऑफ एज्युकेशन में एज्युकेशनल फाउण्डेशन्स एण्ड पॉलिसी स्ट्डीज में प्रोफेसर। जरनल ऑफ फिलोसॉफी ऑफ एज्युकेशन के संपादक मण्डल में सदस्य और ग्रेट ब्रिटेन की फिलोसोफि ऑफ एज्युकेशन सोसाइटी के मानद उपाध्यक्ष।

प्रकाशन : द चाइल्ड्स माइण्ड, द करिक्युलम एण्ड द चाइल्ड : द सलेक्टेड वर्क्स ऑफ जॉन व्हाइट, रीथिंकिंग द स्कूल करिक्युलम एण्ड द चाइल्ड : वैल्यूज, एम्स एण्ड परपजेज।

आवश्यक परख को तो पहले ही स्थान दिया जा चुका है- क्योंकि आदर्श रूप से प्रत्येक नागरिक के विचारों को सम्मिलित करने के मायने हैं कि आम राय का दृष्टिकोण लोकतंत्र के लाभकारी होने के विचार से प्रतिबद्ध है। इससे एक दिलचस्प सवाल पैदा होता है- यदि हम यह मानकर चलते हैं कि लोकतंत्र अच्छा है तो हम इस धारणा से अधिक स्पष्ट, विशेष लोकतांत्रिक मूल्यों को कैसे उत्पन्न कर सकते हैं। और इन्हीं मूल्यों से किस प्रकार राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली के उद्देश्य उत्पन्न होते हैं ? इसके अलावा, किस प्रकार हम आम राय बनाने के लम्बे रास्ते पर चले बिना इन मूल्यों को सीधे तौर पर उत्पन्न कर सकते हैं ?

लोकतांत्रिक मूल्य

आइए देखें कि इस नए सुझाव में कितना दम है- और इसमें क्या खतरे हैं। हम देख चुके हैं कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के माध्यम से शिक्षा के उद्देश्यों और विषयवस्तु का राजनैतिक नियंत्रण व्यावसायिक या अन्य वर्ग आधारित नियंत्रण से बेहतर है। इसकी जड़ में एक लोकतांत्रिक धारणा है- भविष्य के समाज के रूपाकार को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण निर्णयों में सब नागरिकों की भागीदारी होनी चाहिए, न कि केवल कुछ लोगों की। ब्रिटेन की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के पीछे बुनियादी सोच यह है कि लोकतांत्रिक सिद्धान्त वांछनीय हैं। हो सकता है कि इस धारणा से सबकी सहमति न हो। धार्मिक राज्य की अवधारणा में विश्वास रखने वाले शायद इस मत से सहमत न हों; न ही निरंकुश शासन या कुलीन तन्त्र के हिमायती इससे खुश होंगे। इस आलेख के संदर्भ में हमें लोकतंत्र के हक में, उसके विरोधियों के विरुद्ध, पूरे तथ्य और तर्क पेश करने की जरूरत महसूस नहीं होती- इसलिए कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के लिए ठोस प्रतिबद्धता में ही निहित है लोकतंत्र के लिए प्रतिबद्धता। हम यह मानकर चल सकते हैं कि इस आलेख के केन्द्रीय मुद्दे (कि ब्रिटेन की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के उद्देश्यों को कैसे सुधारा-संशोधित किया जाए) पर विचार करने वाले सब लोग इस प्रतिबद्धता के हिमायती हैं। हमारे सामने तुरन्त उठने वाला सवाल यह नहीं है कि क्या लोकतंत्र न्यायसंगत है ? सवाल है- जिस प्रकार के 'लोकतंत्र' के प्रति हम प्रतिबद्ध हैं, उसके निहितार्थ क्या हैं ?

सवाल को इस तरह चिह्नित करने से लग सकता है कि वर्गवाद विरोध के इस नए रूपांतर को भी उसके अन्य रूपों की ही तरह जल्द ही बाहर का रास्ता दिखा दिया जाएगा। क्योंकि, क्या गारन्टी है कि इस बहस में सब पक्ष 'लोकतंत्र' के अर्थ को एक ही ढंग से समझेंगे ? अब से पहले हमने इस बात को कुछ तूल दिया है कि सामान्य-साधारण, फीके किस्म की शब्दावली का प्रयोग वैचारिक मतभेदों को छिपाने के मकसद से किया जा सकता है। क्या यह बात लोकतंत्र के संदर्भ में भी सच नहीं हो सकती ? राजनैतिक दर्शनशास्त्र में लोकतंत्र के सिद्धान्त पर काफी गरम बहस रही है। एक मत के लोग लोकतंत्र की पहचान कुछ विशेष कार्यविधियों के आधार पर करने के हक में होंगे- जैसे कि नियमित चुनाव या बहुमत का राज- बावजूद इसके कि इन कार्यविधियों की ही वजह से ताकत किसी सशक्त, प्रभावशाली समूह या आपस में प्रतियोगी विशिष्ट, संभ्रांत वर्गों के हाथ में रहे। कुछ अन्य लोग कह सकते हैं कि यह प्रभुत्व इस सिद्धान्त के विपरीत है कि प्रत्येक इंसान बराबर का आन्तरिक मूल्य रखता है, स्वयं में कोई इंसान किसी दूसरे से कम या ज्यादा मूल्यवान नहीं है। इसी आधार पर अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा का मूल्य भी जन्म लेता है। इस दूसरे विचार के मुताबिक लोकतंत्र के सिद्धान्त की जड़ में लोकतांत्रिक मूल्य हैं और लोकतांत्रिक कार्यविधियों को भी केवल इसी रोशनी में समझा जा सकता है। लोकतंत्र की समझ के अंतर्गत ही दो और परस्पर विरोधी दृष्टिकोण हैं : एक मत के अनुसार बड़ी जनसंख्या वाले एक आधुनिक राज्य के लिए प्रतिनिधि स्वरूप वाली एक व्यवस्था का होना जरूरी है, जब कि दूसरे पक्ष की धारणा के मुताबिक लोगों की पूर्ण भागीदारी पर आधारित व्यवस्था होनी चाहिए जैसी कि प्राचीन काल के यूनानी नगर राज्यों में थी- आधुनिक हालात में यह तभी मुमकिन है यदि अपने जीवन के ज्यादा से ज्यादा पहलुओं में छोटे स्तर पर भागीदारी आधारित व्यवस्थाएं ज्यादा से ज्यादा हों।

लोकतंत्र के सिद्धान्त की इस प्रतियोगी प्रकृति की वजह से इस नए वर्गवाद विरोधी दृष्टिकोण की मौत नहीं हो जाती। इस बहस के प्रतिभागियों द्वारा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के लोकतांत्रिक औचित्य को स्वीकारा जाता है, उनके दिमाग में लोकतंत्र की एक विशेष संकल्पना होती है और इसी वजह से वे इस बहस में एक न एक पक्ष लेते हुए नजर आते हैं। उनका जोर वर्गवाद के विरोध पर होता है। इसीलिए वे इस लोकतांत्रिक सिद्धान्त का पक्ष लेते हैं कि राजनैतिक निर्णय लेने में प्रत्येक नागरिक को बराबर का हक होना चाहिए। और इसीलिए वे मूल्यों के पाले में खड़े दिखाई देते हैं, न कि कार्यविधियों के। वे इस बात को नहीं नकार सकते कि सरकार का किसी प्रकार का प्रतिनिधि स्वरूप होना जरूरी है- क्योंकि वे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के हक में हैं और इस हक में भी कि इस पाठ्यचर्या के उद्देश्यों को तय करने का कोई तरीका ढूंढ़ना होगा और प्रतिनिधि स्वरूप के तहत ही सब नागरिकों के विचारों को स्थान दे पाना मुमकिन होगा चाहे यह स्वरूप कितना ही अपूर्ण और अधूरा क्यों न हो।

तो हम यह मान सकते हैं कि लोकतांत्रिक राजनैतिक व्यवस्था प्रतिनिधि स्वरूप ही होगी (जिस का अर्थ यह भी नहीं है कि राष्ट्रीय स्तर से नीचे तक प्रत्येक स्तर पर लोगों की भागीदारी नहीं होगी)। यह लोकतांत्रिक स्वरूप मूल्यों पर आधारित होगा न कि कार्यविधियों

पर। इन दो निष्कर्षों पर पहुंचने के स्वतंत्र कारण हैं लेकिन मैं स्थान की कमी के चलते यहां उनके बारे में बात नहीं करूंगा- इसलिए भी कि इसकी जरूरत नहीं है, क्योंकि बहस में भाग लेने वाले सब लोग इन कारणों तथा नतीजों के हक में पहले से प्रतिबद्ध हैं।

उन लोकतांत्रिक मूल्यों के बारे में और क्या कहा जा सकता है जिन के प्रति सभी पक्ष प्रतिबद्ध हैं ?

राजनैतिक बराबरी

प्रत्येक नागरिक के पास राजनैतिक निर्णय लेने का बराबर अधिकार होने का सिद्धान्त राजनैतिक बराबरी के सिद्धान्त का ही अंग है। इस सिद्धान्त को बराबरी के अन्य बुनियादी सिद्धान्तों से अलग करके देखना होगा- जैसे कि सब की आय बराबर होने का सिद्धान्त या हर किसी के लिए न्यूनतम शैक्षिक योग्यताओं की शर्त। यह सिद्धान्त जर्मन दार्शनिक कान्ट द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त पर आधारित है कि इंसान के तौर पर प्रत्येक व्यक्ति मूल्यवान है- प्रत्येक व्यक्ति साध्य के रूप में देखा जाना चाहिए, न कि साधन के तौर पर। इसे हम इंसानों को आदर देने का नैतिक मूल्य कह सकते हैं (देखें, हैरिसन, 1993, अध्याय XV)।

प्रत्येक नागरिक के पास राजनैतिक निर्णय लेने का बराबर अधिकार होने का सिद्धान्त राजनैतिक बराबरी के सिद्धान्त का ही अंग है। इस सिद्धान्त को बराबरी के अन्य बुनियादी सिद्धान्तों से अलग करके देखना होगा- जैसे कि सब की आय बराबर होने का सिद्धान्त या हर किसी के लिए न्यूनतम शैक्षिक योग्यताओं की शर्त। यह सिद्धान्त जर्मन दार्शनिक कान्ट द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त पर आधारित है कि इंसान के तौर पर प्रत्येक व्यक्ति मूल्यवान है- प्रत्येक व्यक्ति साध्य के रूप में देखा जाना चाहिए, न कि साधन के तौर पर।

वैयक्तिक स्वतन्त्रता

इस सिद्धान्त में ही निहित है प्रत्येक व्यक्ति के फलने-फूलने की धारणा। इससे ही लोकतांत्रिक सोच के मूल में मौजूद मूल्य भी जुड़ा हुआ है- व्यक्ति के कल्याण का संरक्षण और इसे बढ़ावा देने का मूल्य। राजनैतिक बराबरी का सिद्धान्त इसमें एक बात और जोड़ता है- कि प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण बराबर तौर पर महत्त्वपूर्ण है।

इसलिए हम सभी की इस बात पर सहमति मानकर चल सकते हैं कि लोकतंत्र का वास्ता सभी नागरिकों के कल्याण को बढ़ावा देने और उसे सुरक्षित करने से है। हां, यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह उद्देश्य केवल लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं का ही हो सकता है। एक कल्याणकारी अधिनायक तंत्र का भी यही उद्देश्य हो सकता है। लेकिन व्यक्तिगत कल्याण का सिद्धान्त लोकतंत्र का तो प्रतीक बन गया है- कम से कम आधुनिक युग में तो लोकतंत्र ने इस सिद्धान्त में नए आयाम जोड़े हैं। एक कल्याणकारी अधिनायक तंत्र भी सभी के कल्याण के लिए सफलतापूर्वक तथा निष्पक्ष ढंग से शायद काम कर सकता हो। लेकिन, तब भी इस प्रणाली की इस धारणा को तो स्वीकार नहीं किया जा सकता कि शासक ही सबसे बेहतर जानते हैं कि प्रजा का व्यक्तिगत फलना-फूलना किस बात में है। व्यक्तिगत कल्याण की लोकतांत्रिक परिकल्पना बिल्कुल अलग है- व्यक्ति विशेष स्वयं यह तय करें कि किन उद्देश्यों एवं संबंधों में सफलता उसे फलता-फूलता जीवन जीने की ओर ले जाएगी। दूसरे शब्दों में, हम इसे 'आत्म-निर्णय' या 'वैयक्तिक स्वायत्तता' के नैतिक मूल्य का नाम दे सकते हैं। यही वह मूल्य है जो ***एससीएए*** फोरम की सहमति पर आधारित मूल्यों की सूची में से अनुपस्थित लगा था। जैसा कि हमने ध्यान दिलाया था, यह उदारवादी विचारधारा का एक महत्त्वपूर्ण मूल्य है। परम्परा निर्देशित समाज में भी व्यक्तिगत कल्याण को (रिश्तों-संबंधों से जुड़े उद्देश्यों सहित) व्यक्तिगत उद्देश्यों की सफलता के साथ जोड़कर देखा जाता है- लेकिन यह उद्देश्य तय किए जाते हैं समुदाय के रीति-रिवाज द्वारा या फिर राजनैतिक/धार्मिक सत्ता के द्वारा। व्यक्ति विशेष द्वारा स्वयं अपने उद्देश्यों को चुने जाने का विचार पिछले 300 सालों में उदारवादी समाज के विकास के चलते ही मुमकिन हो पाया है। आज हम सब यह मानकर चलते हैं कि विवाह करने या न करने का निर्णय व्यक्ति विशेष स्वयं लेगा। यह भी मानकर चलते हैं कि श्रम का निर्देशन नहीं होगा- हम किस शहर में रहना चाहते हैं, क्या काम करना चाहते हैं आदि पर कोई पाबन्दी नहीं होगी (जैसा कि सोवियत यूनियन में थी)। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के लिए प्रतिबद्धता आधुनिक उदारवादी लोकतंत्र के केन्द्र में है, उसकी आत्मा है (हैरीसन, 1993, अध्याय x)। यह विचार इस दावे में ही सम्मिलित है कि प्रत्येक व्यक्ति को राजनैतिक फैसलों में भागीदार होने का बराबर अधिकार है- क्योंकि यह दावा इस विचार पर आधारित है कि व्यक्ति सामूहिक तौर पर, आजादी के साथ, उन महत्त्वपूर्ण राजनैतिक उद्देश्यों को चुन सकते हैं, जिनकी सफलतापूर्वक प्राप्ति या असफलता सभी के कल्याण को प्रभावित करती है।

आजादी

लोकतंत्र, जैसा कि उसे आज समझा जाता है, एक ऐसी राजनैतिक व्यवस्था है जो प्रत्येक नागरिक के स्वतन्त्र कल्याण को बढ़ावा देने और उसे सुरक्षित रखने के सिद्धान्त पर आधारित है। यह उन कुछ हालात को मुहैया करवाने में मददगार है जिनके बिना आजादी से

फलना-फूलना मुमकिन नहीं होगा। अन्य प्रकार की राजनैतिक व्यवस्थाएं- जैसे कि कल्याणकारी अधिनायक तंत्र- खुशकिस्मती से इनमें से कुछ हालात को मुहैया करवा सकता है : आन्तरिक एवं बाह्य शान्ति, रोटी-कपड़ा-मकान जैसी जीवन की आवश्यकताएं आदि। अपनी विशेष किस्म की कानूनी व्यवस्था के माध्यम से लोकतंत्र इन सबसे बढ़कर कुछ प्रदान करने की कोशिश करता है- सोचने और कुछ करने की आजादी। इसके बिना अपने जीवन का स्वतन्त्र रूप से संचालन कर पाना सम्भव ही न होगा। स्वतन्त्रता का सिद्धान्त कहता है कि लोगों को अपनी इच्छानुसार कुछ करने से रोका नहीं जा सकता- जब तक कि यह आजादी किसी दूसरे को कष्ट न पहुंचाती हो।

अन्य मूल्यों की तरह यहां भी कुछ शर्तें रखनी होंगी। क्या कुछ ऐसी स्थितियां हो सकती हैं जिनमें स्वयं व्यक्ति के हित में पाबन्दियां लगाई जाएं ? जैसे- गाड़ी चलाते समय सीट बेल्ट लगाने की जरूरी शर्त या फिर नशीले पदार्थों के सेवन पर कानूनी प्रतिबंध ? क्या ऐसी स्थितियां भी हो सकती हैं जिनमें किसी अधिक वजनदार नैतिक महत्त्व की बात के लिहाज से स्वतन्त्रता पर लगाम लगाई जाए ? जैसे, संभवतः, अनिवार्य फौजी सेवा। इस निबन्ध के उद्देश्यों के संदर्भ में ये प्रतिबंध इतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जितना कि स्वयं केन्द्रीय लोकतांत्रिक मूल्य की पहचान करना, चाहे उसमें कितना ही अधूरापन क्यों न हो या कच्चापन क्यों न हो।

अन्य के कल्याण के प्रति नागरिक चिन्ता

हम यह मानकर चल सकते हैं कि किसी भी राजनैतिक व्यवस्था के पास आत्महित के नंगे नाच पर अंकुश लगाने के पर्याप्त उचित कारण होंगे- जैसे, अन्य लोगों तथा उनके माल-सामान को नुकसान पहुंचाने पर रोक लगाने के लिए कानून या अनुबंध के उल्लंघन के खिलाफ कानून। लेकिन लोकतांत्रिक व्यवस्था इससे भी एक कदम आगे जाती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था के तहत प्रत्येक नागरिक के राजनैतिक फैसलों में भागीदार होने का ही एक हिस्सा है कि व्यक्तियों में सार्वजनिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आपसी सहयोग भी हो। लोकतांत्रिक व्यवस्था द्वारा 'नागरिक' को इसी रूप में परिभाषित किया जाता है कि उसका स्वयं का कल्याण सभी के कल्याण के साथ गुंथा हो- हालांकि कभी-कभार यह परिभाषा इस स्थिति से भिन्न भी हो जाती है क्योंकि शायद एक स्वतन्त्र व्यक्ति के लिए अपने अहं के चलते दूसरे के कल्याण में दिलचस्पी लिए बिना भी फलते-फूलते रहना सम्भव है। लेकिन इस प्रकार की वैयक्तिक आजादी के हक में शायद कोई लोकतांत्रिक शासन नहीं ही होगा। लोकतांत्रिक व्यवस्था के तहत चलने वाली सरकार एक ऐसे राजनैतिक समुदाय के अस्तित्व को मानकर चलती है जिसमें सब व्यक्तियों का कल्याण आपस में गुंथा हुआ हो- और यह बात लोकतांत्रिक निर्णय व्यवस्था के अलग-अलग स्तरों पर होगी। लोकतंत्र अपने नागरिकों से एक विशेष किस्म के चरित्र की उम्मीद रखता है- यह लोकतंत्र की जरूरत भी है। नागरिकों को एक-दूसरे के कल्याण एवं कुशल क्षेम के बारे में चिन्तित होना चाहिए- न केवल उनके कल्याण के बारे में जिनसे सीधा रिश्ता हो बल्कि समाज के ऐसे 'अंजान' व्यक्तियों के बारे में भी जिन्हें वे कभी न मिले हों और सरहदों के पार के उन लोगों के बारे में भी जिनके हश्र से उन का कोई जुड़ाव हो। स्वतन्त्र काम ऐसी ही चिन्ता को प्रकट करने का एक तरीका है।

यहां भी कुछ मुद्दे ऐसे हैं जिन्हें अधिक विस्तार से खंगालने की जरूरत है और जो ज्यादा विवादास्पद भी हैं। मसलन, एक विचाराधीन राजनैतिक समुदाय एक राष्ट्रीय समुदाय के कितना नजदीक आ पाता है ? क्या राष्ट्रीय भावना को अंधराष्ट्र भक्ति से अलग रखा जा सकता है ? ईसाइया बर्लिन (देखिए, ग्रे 1995; डेविड मिलर 1995) तथा अन्य राजनैतिक दार्शनिकों का मानना है कि राष्ट्रीय भावना एक उदारवादी लोकतांत्रिक राजव्यवस्था के लिए आवश्यक भावपूर्ण, सामुदायिक पृष्ठभूमि प्रदान करती है- क्या ऐसा ही है ? लोकतांत्रिक सिद्धान्तों और कार्यविधियों को राष्ट्रीय स्तर से नीचे- मसलन, कार्यस्थल पर- किस हद तक स्थापित किया जाना चाहिए ?

इन मुद्दों पर- और अन्य पर भी- अलग-अलग राय हो सकती है। फिर भी हम शायद यह मानकर चल सकते हैं कि नागरिक संवेदना संबंधी विचार उन सभी को स्वीकार्य होगा जो लोकतांत्रिक ढांचे को राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की योजना बनाने का आधार मानते हैं।

ज्ञान

ज्ञान हर प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था के लिए आवश्यक है। शासक चाहेंगे कि उनके द्वारा लिए जाने वाले निर्णय बहुत कुछ ठोस जानकारियों पर आधारित हों। यह बात निरंकुश शासकों और कुलीनतंत्र के शासकों पर भी उतना ही लागू होती है जितना कि लोकतांत्रिक शासकों पर। स्वयं शासकों की योग्यता और सामर्थ्य के दायरे में आने वाले ज्ञान के अतिरिक्त प्रत्येक तन्त्र को ऐसी महारत की जरूरत रहती है जिस पर वह भरोसा कर सके। तो, किसी भी अन्य राजनीतिक तन्त्र की तरह लोकतंत्र को भी एक हद तक तो अलग-अलग कार्यक्षेत्रों में भरोसेमंद विशेषज्ञों की जरूरत रहती ही है। आधुनिक युग में अब से पहले के समाजों के मुकाबले ज्ञान के और भी अधिक जटिल, आगे बढ़े हुए स्वरूपों पर निर्भरता रहती है, खासतौर से प्राकृतिक विज्ञान तथा अर्थशास्त्र के क्षेत्रों में। अन्य राजनीति तन्त्रों की ही तरह लोकतांत्रिक शासकों को भी

राजनैतिक फैसले लेने में ऐसे विशेषज्ञ ज्ञान से संबंधित महारत का सहारा लेने को तैयार रहना होगा। इसका अर्थ है कि उन्हें ऐसे विशिष्ट क्षेत्रों की बारीकियों का ज्ञान चाहे न भी हो, लेकिन राजनैतिक व्यवस्थाओं पर उनकी खोजों के प्रभाव की समझ तो जरूर होनी चाहिए। परन्तु ऐसा भी नहीं है कि उन्हें विशेषज्ञों द्वारा कही गई प्रत्येक बात पर भरोसा करना चाहिए। बल्कि उनके दावों की स्वतन्त्र रूप से जायजा लेने की प्रक्रिया भी रखनी चाहिए।

लोकतंत्र में, आखिरकार, नागरिक ही सर्वोच्च हैं। इसका अर्थ है कि उन्हें दो प्रकार के ज्ञान की जरूरत होगी। पहला, वह जो उसकी सामर्थ्य में भी है जो विशेषज्ञ न हो (जैसे, वोटतन्त्र की मूलभूत समझ एवं जानकारी या फिर आर्थिक नीतियों के निर्माण संबंधी सिद्धान्तों की बुनियादी पकड़)। दूसरा, राजनैतिक निर्णय लेने में विशेषज्ञों के ज्ञान की प्रासंगिकता का ज्ञान- और इस बात की समझ कि विशेषज्ञों की विश्वसनीयता को कैसे जांचा जाए (एक लोकतांत्रिक मूल्य के तौर पर ज्ञान' के लिए देखें- हैरिसन, 1993, अध्याय IX)।

ज्ञान हर प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था के लिए आवश्यक है। शासक चाहेंगे कि उनके द्वारा लिए जाने वाले निर्णय बहुत कुछ ठोस जानकारियों पर आधारित हों। यह बात निरंकुश शासकों और कुलीनतंत्र के शासकों पर भी उतना ही लागू होती है जितना कि लोकतांत्रिक शासकों पर। स्वयं शासकों की योग्यता और सामर्थ्य के दायरे में आने वाले ज्ञान के अतिरिक्त प्रत्येक तन्त्र को ऐसी महारत की जरूरत रहती है जिस पर वह भरोसा कर सके।

आधुनिक उदारवादी लोकतंत्र के लिए जरूरी कई मूल्यों की निशानदेही हमने कर ली है- राजनैतिक बराबरी, आजादी से फलने-फूलने को बढ़ावा और इस मूल्य की सुरक्षा, विचार की तथा कुछ करने की स्वतन्त्रता, अन्य लोगों के भले की चिन्ता, ज्ञान। ऐसे ही और मूल्य भी हो सकते हैं। शब्दों की सीमा न हो तो इस संबंध में और भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। लेकिन अब तक जो कहा गया है वह हमारे मौजूदा संदर्भ के लिए काफी है- क्योंकि इस निबन्ध का मुख्य केन्द्रबिन्दु सिद्धान्तों और विधियों पर आधारित कार्य प्रणाली पर है। हम इस सवाल के जवाब की तलाश में हैं- सुधरी-संशोधित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के उद्देश्यों को कैसे तय किया जाए ? इस निबन्ध में प्रस्तावित है कि ये उद्देश्य लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति समर्पण पर आधारित हों, उनका मूल लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति समर्पण में हो- साथ ही यह कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के विचार के सभी हिमायती इस बात को तर्क के आधार पर स्वीकार करें। एक मोटे खाके के अंतर्गत यह निबन्ध कुछ मूल लोकतांत्रिक मूल्यों की ओर इशारा करता है और दिखा सकता है कि ये मूल्य किस प्रकार विभिन्न स्तरों और निश्चित बिन्दुओं पर शिक्षा के उद्देश्यों को जन्म देते हैं। विचार और सोच की यह दिशा महत्त्वपूर्ण है- लोकतंत्र के लिए प्रतिबद्धता से उसके मूलभूत मूल्यों की ओर, यहां से शिक्षा के सामान्य-व्यापक उद्देश्यों तथा फिर पाठ्यचर्या के और भी विशेष लक्ष्यों तक पहुंचना। उम्मीद है कि लोग शायद इस स्वरूप और खाके से सहमत होंगे चाहे वे इसके कुछ तत्त्वों से असहमत हों- यानी, इन मुद्दों पर कि लोकतंत्र के आधारभूत मूल्य क्या हैं, उनके लिए क्या शर्तें पूरी करनी होंगी, उनसे क्या उद्देश्य हासिल किए जा सकते हैं आदि से लेकर पाठ्यचर्या की बारीकियों तक।

इस बात को ध्यान में रखते हुए आइए देखें कि किस प्रकार उपरोक्त चुने गए मूल्यों से उद्देश्य और पाठ्यचर्या उत्पन्न होते हैं। यह विवरण सोच और विचार की उस दिशा को दर्शाएगा जिसका अभी जिक्र किया गया था।

शैक्षिक उद्देश्यों का बनना

मूलभूत मूल्यों से हम जितना दूर जाते हैं- शिक्षा के उद्देश्यों की ओर तथा पाठ्यचर्या के निश्चित, चिह्नित लक्ष्यों की ओर- उतना ही दृष्टिकोण में मतभेद बढ़ने की गुंजाइश अधिक होगी। जो बात मैं अब रखूंगा, उसमें मेरा उद्देश्य कार्यप्रणाली विषयक है, सिद्धांतों और विधियों पर आधारित कार्यप्रणाली से जुड़ा हुआ है। लेकिन मुझे कुछ उदाहरण देकर उस दिशा को स्पष्ट करना होगा जिसमें हमारी सोच अधिक ठोस प्रस्तावों के आधार पर आगे बढ़ सके। मेरे विचार से, इनमें से कुछ प्रस्ताव आम तौर पर सभी पक्षों को स्वीकार्य होंगे। विशेष स्तर पर बात करें (जैसे कि समयसारिणीनुमा पाठ्यचर्या की विषयवस्तु और बनावट के बारे में) तो हम पाएंगे कि उच्च स्तरीय महत्त्व के मुद्दों को व्यवहार में लाने के कई तरीके हो सकते हैं। यहां पर मैं इस के एक या दो उदाहरण ही दे पाऊंगा- मेरा मकसद कोई नुस्खा देने या कुछ भी निर्धारित करने का नहीं है।

जैसे-जैसे हम अधिक निश्चित स्थिति में आते चले जाते हैं, एक से, व्यापक उद्देश्यों तक पहुंचने के रास्तों में लचीलापन भी बढ़ता चला जाता है- यह बात एक सवाल पर निर्भर करती है : इस पूरे विस्तार में कानूनी तौर पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या संबंधी निर्देश कहां पर आ कर टिकें ? इसके लिए तयशुदा सामान्य मापदण्ड तो जाने-पहचाने ही हैं। पाठ्यचर्या के पेशेवर नियंत्रण के बजाए राजनैतिक नियंत्रण की दलील मूल्यों एवं उद्देश्यों के मोटे ढांचागत स्वरूप पर ही लागू होती है, पाठ्यचर्या की विशिष्ट, निश्चित बातों पर नहीं। ढांचागत स्वरूप में नागरिकों की दिलचस्पी होती है क्योंकि यह भविष्य के राजनैतिक समुदाय के स्वरूप को भी प्रभावित करता है। जितना अधिक हम

विशेष, निश्चित मसलों की ओर बढ़ते हैं उतना ही पेशेवर नियंत्रण की दलील मजबूत होती है। बेशक इन मसलों पर शिक्षकों के पास महारत होती है। लेकिन समाज को क्या दिशा लेनी चाहिए ?- उनकी महारत इस सवाल पर काम नहीं आती। हां, इन बातों पर वे सबसे उचित जवाब दे पाएंगे कि बच्चों के विशेष समूहों के पास उपलब्ध ज्ञान के संदर्भ में कौन-सा रास्ता अख्तियार करना उत्तम होगा; बच्चों को किस प्रकार प्रेरित किया जाए; स्वयं शिक्षकों के सशक्त पक्ष क्या हैं, इत्यादि।

आगे आने वाली चर्चा के प्रारम्भ में भी हम राजनैतिक नियंत्रण के संदर्भ में ही बात करेंगे। उसके बाद की बातें कुछ धुंधले और अस्पष्ट दायरे में होंगी।

मेरा मुख्य काम यह दिखाना है कि जिन मूल्यों की हम बात कर रहे हैं, वे यकीनन हमें निश्चित कदमों के लिए योजना बनाने में एक दिशा देते हैं। उदाहरण के लिए, मैं लोकतांत्रिक मूल्य के तौर पर ज्ञान की बात करूंगा। ऐसा नहीं है कि यही सबसे महत्त्वपूर्ण लोकतांत्रिक मूल्य है- बल्कि, जैसा मैं दिखाने की कोशिश करूंगा, बात इसके उलट है। हम यह कह चुके हैं कि प्रत्येक नागरिक को राजनैतिक तौर से प्रासंगिक गैर-विशेषज्ञ किस्म के ज्ञान से लैस होना चाहिए; प्रत्येक नागरिक में, राजनीति पर पड़ने वाले विशेषज्ञों के ज्ञान के प्रभाव की समझ भी होनी चाहिए; और इस बात की समझ भी, कि विशेषज्ञों की विश्वसनीयता को कैसे जांचा जाए। इस मसले पर और अधिक सटीक बात होने की जरूरत है, लेकिन हम अब से ही देख पाते हैं कि बहस की दिशा क्या है, इसका इशारा किस ओर है- वृहद ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में एक समाज की बड़ी रूपरेखा की समझ, साथ ही संविधान तथा मौलिक अर्थशास्त्र और राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर मौजूदा हालात की समझ। इसके अलावा, ऐतिहासिक आयाम के साथ ही, विज्ञान, तकनीकी, गणित, अर्थशास्त्र विज्ञान, चिकित्सा शास्त्र इत्यादि की राजनैतिक प्रासंगिकता। इस प्रकार हम मौजूदा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के कुछ तत्वों के सम्पर्क में आते हैं- हालांकि कुछ अन्य तत्त्व जिनका अभी जिक्र हुआ था, उसमें शामिल नहीं हैं।

ज्ञान का बहुत महत्त्व है। लेकिन यही ध्यान केन्द्रित करने योग्य, *सर्वप्रथम* मूल्य नहीं है। बल्कि यह लोकतंत्र के ही मूल्यों में से निकला हुआ मूल्य है। लोकतंत्र के आधारभूत विचार के मुताबिक प्रत्येक इंसान अपने आप में महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान है- राज करने वाले तथा प्रजा, दोनों ही रूपों में : प्रत्येक इंसान की आजादी और स्वायत्तता को सुरक्षित रखा जाना और बढ़ावा दिया जाना चाहिए (व्यक्तिगत तौर पर भी और राजनैतिक निर्णय प्रक्रिया के भागीदार के तौर पर भी)। इन मूल्यों के लिए एक और बात का होना जरूरी है- प्रत्येक इंसान में अन्य नागरिकों के कल्याण की चिन्ता की भावना का होना। इन सब मूल्यों से ही यह बात निकलती है कि एक स्वतंत्र नागरिक के पास राजनैतिक रूप से प्रासंगिक ज्ञान का होना आवश्यक हो जाता है।

एक नागरिक को अन्य किस्म के और अन्य मकसद लिए हुए ज्ञान की भी जरूरत होती है। लेकिन इस पर हम बाद में चर्चा करेंगे क्योंकि ज्ञान संबंधी उद्देश्यों से भी महत्त्वपूर्ण और आधारभूत हैं स्वभाव एवं मनोवृत्ति संबंधी उद्देश्य। एक लोकतांत्रिक नागरिक को राजनैतिक बराबरी, स्वायत्तता, आजादी तथा अन्य नागरिकों के प्रति आदर एवं प्रेमभाव के आधारभूत मूल्यों को न केवल बौद्धिक स्तर पर बल्कि व्यवहार के मार्गदर्शन के लिए भी स्वीकार करना होगा। इसे हम व्यक्तिगत गुणों के खाते में डाल सकते हैं- या अब फिर से प्रयोग में आ रही पुरानी शब्दावली में कहें तो ये 'चरित्र के गुण' हैं जो एक नागरिक में होने चाहिएं। इन गुणों में ये सब आएंगे- सब व्यक्तियों के लिए आदर भाव, आत्म-सम्मान की भावना, आत्म-निर्देशित होने का जज्बा, सहिष्णुता एवं उदारता, परोपकार एवं हितैषी भाव, कार्यस्थल पर तथा अन्यत्र, साझा-सामुदायिक उद्देश्यों को पाने में आपसी सहयोग, नैतिक बल। आत्म-निर्देशित होने का जज्बा अन्य व्यक्तिगत गुण और अच्छाइयां भी लिए हुए है- संबंधों तथा परियोजनाओं के लिए पूर्ण प्रतिबद्धता, स्वतंत्र निर्णय शक्ति, आत्म-विश्वास, स्वयं को समझने का माद्दा। व्यक्तिगत कल्याण के व्यापक मूल्य का ही एक आधुनिक भिन्न रूप है स्वायत्त, स्वतन्त्र रूप से कल्याण और यह निर्भर करता है कुछ परम्परागत सद्गुणों पर- जैसे कि विभिन्न प्रकार के शारीरिक भय के होते हुए भी साहस दिखाना, भोजन, पदार्थों तथा सैक्स जैसी शारीरिक भूख पर उचित नियंत्रण, क्रोध पर आत्म-नियंत्रण तथा सहनशीलता आदि-आदि।

ये कुछ व्यक्तिगत गुण हैं जो एक लोकतांत्रिक नागरिक में होने चाहिएं। यह पूर्ण सूची नहीं है लेकिन यह व्यवहारिक तौर पर सहायक जरूर है- इससे दिशा मिलती है कि स्कूलों तथा माता-पिता द्वारा बच्चों में कैसी वृत्तियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। सांकेतिक, लाक्षणिक तौर पर यदि इसे सहमति मिले तो इस सूची में दम है। 1988 के राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में दिए गए प्रथम, लेकिन व्यवहारिकता के नजरिए से बेकार, आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा मानसिक विकास के उद्देश्य से यह कोसों आगे है।

कार्यप्रणाली विषयक संदर्भ में (in the methodological context) सुधरी-संशोधित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के उद्देश्यों को तय करने में यह पहला चरण है- उन व्यक्तिगत गुणों तथा वृत्तियों की निशानदेही करना जिनका बच्चों में होना या पोषण किया जाना उचित है। हां,

यह कार्य केवल स्कूली पाठ्यचर्या के लिए ही नहीं है- मां-बाप द्वारा की गई परवरिश पर भी उतना ही लागू होता है और मीडिया पर भी। अगला कदम यह देखने का होगा कि ऊपर जिक्र में आई मनोवृत्तियों से और किन वांछित उपलब्धियों की प्राप्ति होती है।

व्यक्तिगत गुण तो इतने हैं कि इन पर चर्चा बहुत विस्तृत होगी (व्यक्तिगत मूल्यों तथा पाठ्यचर्या के संदर्भ में इनके निहितार्थ के लिए देखिए व्हाइट, 1990)। इसलिए मैं यहां एक-दो उदाहरण ही दूंगा जिनसे अन्दाजा लग सके कि इस मुद्दे पर पाठ्यचर्या की योजना बनाने में किस प्रकार आगे बढ़ा जाए।

इन दिनों भावनाओं की शिक्षा के मसले में काफी दिलचस्पी ली जा रही है। डैनियल कोलमन (1996) की नई पुस्तक Emotional Intelligence धड़ाधड़ बिक रही है।

ब्रिटेन में एक नया प्रेशर ग्रुप है, ANTIDOTE, उनका प्रथम मुख्य उद्देश्य है- "लोगों को भावनात्मक और सामाजिक दक्षताओं को विकसित करने में इस प्रकार सक्षम बनाना कि वे अपने जीवन को स्वयं तथा समाज के हित में नियंत्रित-संचालित कर पाएं" (ANTIDOTE, 1997)। ऊपर वर्णित कई व्यक्तिगत गुण इसी दिशा में इशारा करते हैं। बच्चों को सीखना होगा कि वे अपने भावनात्मक जीवन को कैसे संचालित करें ताकि वह उनके स्वयं की तथा समाज की खैरियत को थाम के रखे और उसमें बाधित न हो। उनकी आवश्यकता है कि वे भय, क्रोध, चिन्ता, शर्म, दोष और गौरव जैसी अपनी भावनाओं, अपनी सहानुभूतियों, घृणा तथा तिरस्कार, प्रेम और लगाव के जज्बात को सम्भाल पाएं। इससे भी बढ़कर, वक्त आने पर उन्हें प्रेम के विभिन्न रूपों से प्रेरित होना होगा- यौन संबंधी प्रेम, मित्रता, नागरिकता के दायरे में आने वाली व्यापक दोस्तियां जो उन्हें राजनैतिक समुदाय में अन्य लोगों के साथ जोड़ती हैं तथा स्वयं द्वारा चुने गए कार्य के साथ प्रतिबद्धता। भावनात्मक शिक्षा की नींव तो परिवार में रखी जानी चाहिए लेकिन इस में स्कूल की भूमिका भी बहुत अहम है।

मैं नागरिक-शासक के रोल के संदर्भ में ज्ञान और समझ की बात कर चुका हूं। यहां पर मैं इससे संबंधित ज्ञान की किस्मों की बात को नहीं दोहराऊंगा। लेकिन व्यक्तिगत गुणों का विकास और पोषण ज्ञान से संबंधित अन्य जरूरतों को भी जन्म देता है। आत्म-निर्देशित होने के गुण को ही ले लीजिए। इसी से यह बात निकलती है कि व्यक्ति को अपने मुख्य उद्देश्य और संबंध- रिश्ते स्वतन्त्र-स्वायत्त तौर पर चुनने होंगे न कि किसी रस्म-कायदे में बंधकर या किसी आदेश के तहत। स्वतंत्र, स्वायत्त तौर पर चुनाव के लिए आवश्यक होगा कि व्यक्ति के पास कई विकल्प भी हों जिनमें से एक को चुना जा सके। शिक्षा के संदर्भ में इसके निहितार्थ हैं कि युवाओं की परवरिश करते हुए उनमें इन विकल्पों की समझ पैदा करनी होगी ताकि वे उनमें से चुनाव कर सकें- या कुछ को नकार सकें। ये विकल्प कई क्षेत्रों में फैले होंगे; गैर-व्यवसाय संबंधी दिलचस्पियों, जीवन शैलियों, धार्मिक प्रतिबद्धताओं, तरह-तरह के संबंधों में इनका फैलाव होगा। युवाओं को मालूम होना चाहिए कि कितने वैकल्पिक कार्य क्षेत्र उनके लिए खुले हैं; कितनी बौद्धिक, कलात्मक और खेल-कूद संबंधी गतिविधियां; विभिन्न प्रकार के यौन तथा यौनेतर संबंध- तथा और भी बहुत कुछ। यह सब सीधे जुड़ता है उस स्कूली उद्देश्य से जिसका संबंध 'खुलते विकल्पों' या 'फैलते फलक' से है। यह समझना मुश्किल नहीं है कि किस प्रकार पाठ्यचर्या के कुछ परम्परागत तत्त्वों- जैसे विज्ञान तथा कला संकाय- की इस कहानी में लाजमी भूमिका है। विज्ञान और गणित की थोड़ी बहुत पकड़ के बगैर कितनी ही नौकरियां पहुंच से बाहर होंगी; कलाओं के लिए थोड़ी बहुत भावना और संवेदनशीलता न हो तो एक व्यक्ति उस सबसे वंचित रहता है जो कुछ लोगों के लिए उनकी खैरियत का, उनके कल्याण का, एक बहुत बड़ा हिस्सा है। और ये तो केवल दो ही उदाहरण हैं।

अलग-अलग विकल्पों की समझ के अलावा युवाओं में इस बात की अन्तर्दृष्टि भी होनी होगी कि आत्म-निर्देशित पथ पर चलते हुए उन्हें किस प्रकार के समाज से होकर गुजरना होगा। अपने समाज के बारे में जानकारी हासिल करना नागरिक के तौर पर एक व्यक्ति की भूमिका का ही एक हिस्सा है। अब हम यह भी कह सकते हैं कि आत्म-निर्देशित होने के व्यक्तिगत आदर्श से भी इसी इच्छा की पूर्ति की जा सकती है।

जिक्र में आए अन्य व्यक्तिगत गुण भी ज्ञान की मांग करते हैं। शारीरिक इच्छाओं का उपयुक्त नियंत्रण मांग करता है कि एक व्यक्ति के पास यौन संबंधी ज्ञान हो, उसके पास शारीरिक स्वास्थ्य, आहार संबंधी विज्ञान, नशीले पदार्थों की लत संबंधी ज्ञान हो। आत्म-ज्ञान और परोपकार या मित्रता जैसे सद्‌गुण मनोवैज्ञानिक जागरूकता पर निर्भर करते हैं- हालांकि यह सवाल भी उठता है कि क्या अकादमी मनोविज्ञान इसके लिए उतना ही भरोसेमंद साधन है जितना कि साहित्य या व्यक्तिगत स्तर पर परस्पर आदान-प्रदान।

पाठ्यचर्या के उद्देश्यों को तय करने में यह पहला चरण है- उन व्यक्तिगत गुणों तथा वृत्तियों की निशानदेही करना जिनका बच्चों में होना या पोषण किया जाना उचित है। हां, यह कार्य केवल स्कूली पाठ्यचर्या के लिए ही नहीं है- मां-बाप द्वारा की गई परवरिश पर भी उतना ही लागू होता है और मीडिया पर भी।

इस सबसे बच्चों को दरकार ज्ञान और समझ की आंशिक तस्वीर ही मिलती है। एक विस्तृत विवरण अधिक व्यवस्थित ढंग से इस सबका रेखाचित्र प्रस्तुत करेगा। उस विवरण में ज्ञान के तर्कसंगत, श्रेणीबद्ध वर्गीकरण के बारे में भी अधिक बात हो पाएगी- मसलन, समाज के बारे में ज्ञान के लिए, विज्ञान और तकनीकी की एक स्तर तक की न्यूनतम पकड़ का आवश्यक होना तथा और बहुत कुछ सीखने में साक्षरता की महत्त्वपूर्ण भूमिका।

उद्देश्यों से पाठ्यचर्या की ओर

तो यह था लोकतांत्रिक मूल्यों से उत्पन्न शिक्षा के उद्देश्यों का एक खाका जिसमें निजी, व्यक्तिगत गुणों से संबंधित उद्देश्य सबसे आगे हैं और ज्ञान से संबंधित उद्देश्य इनमें से प्राप्त किए जाते हैं। कार्यप्रणाली विषयक अगला चरण है यह तय करना कि ऐसे उद्देश्यों को संस्थागत व्यवस्थाओं के तहत किस प्रकार साकार किया जाए। यहां पर मैं इसका न्यूनतम खाका पेश करूंगा- कुछ हद तक इसलिए कि ***आईपीपीआर*** द्वारा प्रकाशित 'सबके लिए एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या' (A National Curriculum for All) में विस्तृत वर्णन है। (यह फिलिप ओ हिअ्र और मैंने 1991 में लिखा था)।

परिवार

नींव रखने का अधिकतर शुरुआती काम परिवारों द्वारा किया जाएगा। बच्चों के सबसे पहले शिक्षक होने के नाते माता-पिता का काम है कि वे उनमें अपेक्षित निजी गुणों का पोषण करें, उन्हें भाषा सिखाएं, सामाजिक एवं प्राकृतिक संसार से संबंधित प्राथमिक ज्ञान से लैस करें और उनके क्षितिज को विस्तार देने के काम की शुरुआत करें। यह खोज और छान-बीन का विषय हो सकता है कि अपने मुख्तलिफ रूपों में माता-पिता द्वारा प्रदान की गई शिक्षा या निर्देश कहां तक इन जाने-पहचाने कार्यों और शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों के बीच के संबंध को समझने में मददगार होंगे

स्कूल तथा परिवार

स्कूल की क्या भूमिका होनी चाहिए ? पहली बात- स्कूल का कार्य परिवार के कार्य और भूमिका से अचानक अलग नहीं किया जाना चाहिए। दोनों के आधारभूत उद्देश्य एक से हैं इसलिए माता-पिता तथा शिक्षकों को एक दूसरे के नजदीकी सम्पर्क में रहना चाहिए। स्कूल, परिवार द्वारा डाली गई नींव के आधार पर ही आगे बढ़ता है। स्कूल वैयक्तिक गुणों को अधिक पेचीदा और जटिल रूपों में विकसित करता है- कक्षा में बच्चे द्वारा प्राप्त किया गया नया ज्ञान और जानकारियां इसमें अपनी भूमिका निभाते हैं। मसलन, परोपकार संबंधी निजी गुण की ही बात करें। परिवार के छोटे स्तर पर माता-पिता द्वारा दूसरों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण, चिन्ता का जज्बा बच्चों में पोषित किया जाता है- यह जज्बा परिवार के सदस्यों, पालतू जानवरों और मित्रों तक सीमित रहता है। शिक्षक इन सहानुभूतियों और संवेदनशील व्यवहार को विस्तार देते हैं- बड़े राष्ट्रीय समुदाय के 'अजनबियों' तक और उससे आगे भी। यहां तक कि यह संवेदना और सहानुभूति ऐतिहासिक एवं साहित्यिक किरदारों तक फैलाई जाती है। यह उस भरपूर ज्ञान पर निर्भर होगा जो बच्चा सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं साहित्य और इतिहास आदि से हासिल करेगा।

पूर्ण स्कूल की विशेषताएं

जब हम बड़े उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए स्कूल द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली प्रक्रियाओं और कार्यविधियों पर विचार करते हैं तो पहले हमें पूर्ण स्कूल की प्रक्रियाओं के बारे में सोचना होगा, उसके बाद ही टाइम टेबल आधारित पाठ्यचर्या के बारे में।

व्यक्तिगत गुणों और मनोवृत्तियों के पोषण में पूरे स्कूल के स्तर पर की जाने वाली गतिविधियों और प्रथाओं की भूमिका को अब काफी व्यापक पैमाने पर स्वीकार किया जा रहा है। अकसर इसे लोकतांत्रिक नागरिकता के लिए आवश्यक सद्गुणों और भावनाओं के साथ जोड़कर देखा जाता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या का सुधार और संशोधन इसे और भी व्यवस्थित कर सकता है। सबके प्रति बराबर आदर, सहनशीलता और उदारता, दूसरों की चिन्ता, नैतिक बल, निजी स्वतंत्रता, आत्म-संयम जैसी बातों को स्कूल की औपचारिक और अनौपचारिक आशाओं के माध्यम से प्रोत्साहित किया जा सकता है- यह कक्षा के भीतर भी हो सकता है और बाहर भी।

समयसारिणीनुमा पाठ्यचर्या

और अब, अन्त में आते हैं समयसारिणीनुमा पाठ्यचर्या पर। ज्ञान से संबंधित उद्देश्य यहां अपने असल रूप में आ जाते हैं। ढांचागत शिक्षण अध्ययन इन उद्देश्यों की मांग हैं। और यही अकेली शर्त नहीं है। जो कुछ भी अब से पहले कहा गया है, उसकी रोशनी में चर्चाएं, कार्यशालाएं तथा निजी, सामाजिक तथा स्वास्थ्य शिक्षा के क्षेत्र में गतिविधियां भी बहुत अहमियत रखेंगी। कलाओं से आनन्द उठाने की प्रक्रिया को गहराई देने से जुड़ी गतिविधियां भी महत्त्वपूर्ण होंगी। लेकिन ज्ञान हासिल करना भी एक महत्त्वपूर्ण पक्ष होगा। जिस रूप में मैं इस शब्द का प्रयोग कर रहा हूं, यह तथ्यों की जानकारी से कहीं अधिक होगा। इसमें आधारभूत सिद्धान्तों की समझ भी शामिल होगी और पढ़ने, लिखने, ऐतिहासिक संदर्भ के साथ सोच-विचार करने, कम्प्यूटर पर काम करने जैसे व्यवहारिक ज्ञान के रूप भी शामिल होंगे। ज्ञान संबंधी उद्देश्यों को हमने आधारभूत नैतिक मूल्यों से ग्रहण किया था। इस संदर्भ में हमने कुछ

अपेक्षित उपलब्धियों की बात भी की थी- विज्ञान, गणित, इतिहास, तकनीकी, सामाजिक विज्ञान, राजनीति, मनोविज्ञान, आत्म-ज्ञान, अर्थशास्त्र में उपलब्धियों की बात। इनमें से कुछ को मौजूदा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में शामिल किया गया है, कुछ को नहीं। जहां वे शामिल किए गए हैं, वहां मौजूदा लिखित कानून संबंधी निर्देशों की जरूरतों को फिर से देखना होगा- क्या वे नए, लोकतंत्र प्रेरित बिल के अनुरूप हैं या नहीं ? मसलन, मुख्य चरण 3 का इतिहास इस समय नौर्मन विजय से हिरोशिमा तक के समयकाल को प्रभावी रूप में ढाई साल में पूरा कर लेता है और इसका बहुत ही छोटा-सा अंश बीसवीं सदी से संबंधित है। बहुत से, मुमकिन है कि अधिकतर, छात्र-छात्राएं स्कूल छोड़ने से पहले इतना ही इतिहास पढ़ते हैं- पिछले 100 साल के इतिहास को समझने के हक में तराजू को कितना झुकाना होगा?

नींव रखने का अधिकतर शुरुआती काम परिवारों द्वारा किया जाएगा। बच्चों के सबसे पहले शिक्षक होने के नाते माता-पिता का काम है कि वे उनमें अपेक्षित निजी गुणों का पोषण करें, उन्हें भाषा सिखाएं, सामाजिक एवं प्राकृतिक संसार से संबंधित प्राथमिक ज्ञान से लैस करें और उनके क्षितिज को विस्तार देने के काम की शुरुआत करें।

समयसारिणीनुमा पाठ्यचर्या के बारे में मुझे और बारीकी में जाने की जरूरत नहीं है- मैं कोई निर्देश या नुस्खा नहीं दे रहा बल्कि केवल एक वैचारिक पथ की ओर इशारा कर रहा हूं। वैसे भी बारीकियों पर तो तभी काम किया जा सकता है जब व्यापक उद्देश्यों का नींव के ऊपर का ढांचा तैयार हो चुका हो। जैसा कि हम कह ही चुके हैं कि एक हद के बाद बारीकियों की बात तो शिक्षकों पर ही छोड़ दी जानी चाहिए। पेशेवर के बजाए राजनैतिक नियंत्रण के हक में दी गई लोकतांत्रिक दलील सामान्य, व्यापक उद्देश्यों पर और मोटे पाठ्यचर्या के ढांचे पर लागू होती है। उसके आगे तो पेशेवर लोगों के पास ही प्रासंगिक, संबद्ध महारत होती है।

समयसारिणीनुमा पाठ्यचर्या को फिर से तैयार करने से संबद्ध किसी भी कोशिश में एक मुख्य बात ध्यान में रखनी होगी- यह एक सुसंगत, सामंजस्यपूर्ण चित्र का रूप ले जिसमें शिक्षा संबंधी उद्देश्यों की पूरी तस्वीर बने और इसमें सभी तफसीली मुद्दों का योगदान हो। साथ ही इस योगदान के हक में ठोस, औचित्यपूर्ण दलीलें भी दी जा सकें। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण एक और बात है- इस व्यवस्था में काम करने वाले शिक्षक इन दलीलों के औचित्य के साथ सहज महसूस करें। इनके द्वारा रोजाना किए जा रहे काम का बड़े उद्देश्यों के साथ संबंध उन्हें स्पष्ट होना चाहिए। ब्रिटेन में ही नहीं, अन्य देशों में भी, इस मुद्दे पर शिक्षण के व्यवसाय में कमी और कमजोरी रहती आई है। 1988 की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या बेहतर बदलाव ला सकती थी। लेकिन लगता है कि जरूरत से ज्यादा निर्देशित करने की प्रवृत्ति तथा बाह्य मूल्यांकन के दबावों के चलते शिक्षकों का ध्यान विशेष बातों पर ही ज्यादा केन्द्रित रहा है।

निष्कर्ष

बहस का सिलसिला अब पूरा हो चुका है। हमारा शुरुआती सवाल था : सन् 2000 के बाद के राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के उद्देश्य कैसे तय किए जाएं ? वर्गवाद एक केन्द्रीय समस्या है- यानी जनसंख्या के किसी एक वर्ग द्वारा चुने गए मूल्यों को थोपा जाना। हमने वर्गवाद से बचने के तरीकों की छानबीन की और पाया कि इसमें कामयाबी नहीं मिली। ***क्यूसीए*** द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों के मुद्दे पर आम राय बनाने की कोशिश भी इस प्रक्रिया में शामिल है और वहां भी सफलता कमोबेश हाथ नहीं लगी। लेकिन आम राय बनाने की प्रक्रिया ने वर्गवाद से निपटने के एक और रास्ते की ओर इशारा किया- यह रास्ता है नई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या को लोकतंत्र के मूलभूत मूल्यों से उठाने का रास्ता- ऐसे मूल्य जिन्हें राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के सिद्धान्त को मानने वाले सब लोगों द्वारा स्वीकार किए जाने की आशा की जा सकती है। हमने यह भी देखा कि ये मूल्य कई प्रकार के व्यापक शिक्षा-संबंधी उद्देश्यों को जन्म देते हैं और इन उद्देश्यों को पाठ्यचर्या के विशेष लक्ष्यों से साकार किया जा सकता है। पूरी बहस और दलील का बल कार्यप्रणाली विषयक रहा है- हमारे शुरुआती सवाल का जवाब तलाशने का पक्का रास्ता ढूंढ़ना।

तो इस निबन्ध का निष्कर्ष है कि उद्देश्यों की जड़ें लोकतांत्रिक मूल्यों में हों। यह किसी भी विशेष सरकार के इस दावे को चुनौती देता है कि लोकतांत्रिक ढंग से चुने जाने के कारण उसे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की विषयवस्तु तय करने या उसे फिर से तैयार करने का अधिकार है- और इस दावे को भी कि वह अपने राजनैतिक नजरिए के मुताबिक ऐसा कर सकती है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या को राजनीति का फुटबॉल नहीं बनना चाहिए, कि कोई भी सेक्रेटरी ऑव स्टेट उसे अपनी वर्ग आधारित पसन्द के मुताबिक चला ले। लोकतांत्रिक मजबूती इससे कहीं गहरी होती है। उसकी पहुंच संविधान की आधारशिला तक जाती है।

क्या ये दलीलें प्रभावी हैं ? मैं अपने लिए स्वयं तय किए गए कार्यप्रणाली विषयक रास्ते से भटक कर अपनी निजी पसन्द-नापसन्द के आधार पर नुस्खे देने में तो नहीं लग गया ? मेरी कोशिश रही है कि ऐसा न करूं लेकिन यदि ऐसा हुआ है तो मुझे आगाह किया जा सकता है। हम खतरनाक जमीन पर हैं। दार्शनिक इस बात के जानकार नहीं है कि अच्छा जीवन क्या है- और इसीलिए वे शिक्षा के उद्देश्यों के जानकार भी नहीं हैं (यह बात मुझ पर भी लागू होती

है)। लेकिन कभी-कभी अन्य लोग उन्हें इन मुद्दों का जानकार मान लेते हैं। केवल उदाहरण के लिए या आरजी तौर पर किए गए दावों को कई बार पक्का सत्य मान लिया जाता है। मैं स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि जो कुछ भी मैंने लिखा है कि वह हर किसी के लिए उपलब्ध है- उसे किसी भी नजरिए से देखा जा सकता है। वर्गवाद और लोकतंत्र के बारे में की गई पूरी बहस दोषपूर्ण हो सकती है। लोकतांत्रिक मूल्यों की सूची को चुनौती दी जा सकती है। उद्देश्यों और पाठ्यचर्या के बारे में की गई बातें और भी अधिक विवादास्पद हो सकती हैं। मैंने एक से अधिक बार कहा है- और फिर कहता हूं- कि मेरी सबसे बड़ी आशा यही है कि मैं शायद उस दिशा में इशारा कर पाया हूंगा जिस ओर नीति निर्धारक जा सकते हैं। अधिक विवाद योग्य विषयों पर और अधिक चर्चा हो सकती है- उसके बाद ही मुद्दों को कानूनी रूप देने की ओर बढ़ा जाएगा।

एक आखिरी चिन्ता। स्वयं को राजनैतिक यथार्थवादी समझने वाले कहेंगे कि सन् 2000 में या इसके बाद पाठ्यचर्या फिर से तैयार करने की प्रक्रिया इतनी सम्पूर्ण, आमूलचूल नहीं हो सकती जितना कि इस निबन्ध की दलील से लग सकता है। बदलाव वृद्धि की दृष्टि से होना होगा, क्रान्तिकारी ढंग से नहीं। शिक्षकों से बात की जाए, उनसे पूछा जाए कि वे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में कोई बदलाव नहीं चाहते या थोड़ा-सा बदलाव चाहते हैं या फिर बड़ा बदलाव (जैसा कि ***क्यूसीए*** की मौजूदा मॉनीटरिंग के दौरान बुनियादी विषयों के प्रतिनिधियों से पूछा गया)। बहुत ही कम लोग तीसरे किस्म का, यानी बड़ा, बदलाव चाहेंगे- अधिकतर लोग पिछले कुछ सालों की काट-छांट-बदलावों के दबाव के चलते कुछ भी क्रान्तिकारी नहीं चाहेंगे।

अभी यह स्पष्ट नहीं है कि पाठ्यचर्या फिर से तैयार करने का काम कितनी सम्पूर्णता से होगा- या कंजूसी और रूढ़िवादिता से। कुछ लोगों द्वारा अभी से कहा जा रहा है कि इस प्रक्रिया के अंतर्गत एक 'बड़ा विचार' सरकार के लिए कितना लाभदायक होगा। शायद यह पेपर इसके बीज बो सकता है। दूसरी ओर यह भी समझ में आता है कि पिछले कुछ अरसे की उथल-पुथल के बाद शिक्षक किसी बड़े बदलाव के हक में नहीं होंगे- गम्भीर किस्म की आपत्तियों के बावजूद उन्हें अकसर नुस्खे भी देने पड़ते हैं। मुझे आशा है कि सरकार शिक्षकों की इच्छाओं को निर्णायक नहीं मानेगी। अगर ऐसा करने का उसका इरादा हो भी तो राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के हक में दी जाने वाली दलील के तर्क के कारण उसे अपने इरादे पर फिर से विचार करना चाहिए- पेशेवर, व्यवसायी हितों के वर्गवाद से बचने के तर्क के कारण। लेकिन एक और बड़े बदलाव के विरोध पर काबू पाने का कोई तरीका तो तलाशा जा सकता है। शिक्षकों को लगता है कि उनका बोझ बढ़ेगा, इसलिए वे इस बदलाव का विरोध करते हैं। यह बात 1988 के बदलावों के लिए सच है और बाद के कुछ संशोधनों के लिए भी। लेकिन कल्पना करें कि सन् 2000 के बाद के बदलाव शिक्षण कार्य को और भी अधिक संतुष्टिकर बना देते हैं- तब क्या शिक्षक इन बदलावों का विरोध करेंगे ?

और अधिक परिवर्तन की इच्छा न रखने वाले शिक्षक अक्सर वही हैं जो 1988 की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या द्वारा उनके काम के सूक्ष्म स्तर तक के निरीक्षण पर एतराज उठाते हैं। यदि इस आलेख में दी गई दलीलों जैसी बातें स्वीकार कर ली जाती हैं तो राज्य के नियन्त्रण पर अंकुश लग जाएगा। उस सूरत में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या सूक्ष्म बातों में सख्त लेकिन उद्देश्यों के मामले में भाव शून्य और खाली होने के बजाए योजनाबद्ध तरीके से निश्चित किए गए उद्देश्यों वाली होगी- इसके फलस्वरूप पाठ्यचर्या संबंधी जरूरतों का एक ढांचा भी होगा जो निश्चित, विशेष बातों से जुड़े फैसले पेशेवर हाथों में छोड़ेगा। इससे मिलने वाली आजादी का ज्यादातर शिक्षक स्वागत करेंगे, ऐसी आशा की जा सकती है। जिन्हें सहायता की जरूरत है उन्हें गैरकानूनी, अनौपचारिक स्तर पर पथ-प्रदर्शन मिल सकता है। उसे स्वीकार करना या ठुकराना उन्हीं के हाथ में होगा। सभी शिक्षक अपने काम में और अधिक स्वायत्त हो जाएंगे, वे किसी अजनबी निर्देशन के हथियार या औजार नहीं रहेंगे। कार्यरत रहते हुए ही नई व्यवस्था की मौलिक सैद्धान्तिक सोच में प्रशिक्षण मिले तो वे अपने रोज के काम की विशेष, निश्चित क्रियाओं को शिक्षा के व्यापकतम उद्देश्यों के साथ जोड़कर देख पाएंगे। वे सामूहिक तथा व्यक्तिगत, दोनों स्तरों पर अपने कार्य के लिए ठोस दलीलें और औचित्य प्रस्तुत कर पाएंगे- और ऐसा वे उच्च स्तरीय विचारणीय मुद्दों के संदर्भ में भी कर पाएंगे। ऐसी स्थिति में वे स्वयं को एक अस्पष्ट, असंगत व्यवस्था के उद्देश्यों की पूर्ति में जुटे होने की वजह से कटा हुआ महसूस नहीं करेंगे। वे स्वायत्त, स्वतंत्र पेशेवर के तौर पर एक नए उद्यम, नई योजना का आंशिक भागीदार महसूस करेंगे। इस रूप में वे अपने छात्र-छात्राओं के लिए स्वीकार्य रोल मॉडल के तौर पर कार्य करते दिखेंगे। वे स्वयं अपने उदाहरण से सिखा रहे होंगे कि एक लोकतांत्रिक नागरिक होने के अर्थ क्या हैं।

अगर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या इस दिशा को पकड़ता है तो कुछ और बातों को भी त्यागना होगा। मसलन, राष्ट्रीय मूल्यांकन की वर्तमान व्यवस्था। इस बात को आगे चर्चा में लाने का अर्थ होगा इस आलेख की कार्यप्रणाली विषयक सीमा से और भी दूर निकल जाना। इसलिए फिलहाल मैं इतना ही कहूंगा कि मूल्यांकन के उद्देश्यों पर भी उतने ही पुनर्विचार की जरूरत है जितनी कि स्वयं पाठ्यचर्या

पर। दो प्रकार के मूल्यांकन को बिल्कुल अलग करना होगा। एक- रचनात्मक मूल्यांकन (Formative Assessment) जिसका मकसद बच्चों को सीखने में मदद करना है। दूसरे, यह सुनिश्चित करने के लिए कि स्कूल बढ़िया ढंग से कार्य कर रहा है और स्थानीय माता-पिता का उसमें विश्वास है, स्कूल के कार्य का मूल्यांकन। मूल्यांकन संबंधी हमारी राष्ट्रीय योजना लम्बी-चौडी, पेचीदा और जटिल है; वह कई समस्याओं की जननी भी है- ऊपर मूल्यांकन संबंधी कही गई दोनों बातों के इस योजना से जुड़े होने की कोई जरूरत नहीं है।

टिप्पणी

अपने साथियों रिचर्ड आल्ड्रिच, स्टीव ब्रामल तथा पैट्रिशिया व्हाइट का तथा ***क्यूसीए*** की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रिव्यू टीम के इयून कॉल्विल और क्रिस जोन्स का आभारी हूं- पहले की एक रूपरेखा पर दी गई उनकी मददगार टिप्पणियों के लिए।

क्यूसीए की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रिव्यू टीम ने इस मुश्किल को पहले से ही भांप लिया था और इससे निपटने के लिए कदम भी उठाए। मानचेस्टर युनिवर्सिटी के सेन्टर फॉर फॉरमेटिव असैस्मेंट स्टडीज (स्कूल ऑव एजुकेशन) के डॉ. बिल बॉयल के नेतृत्व में एक रिसर्च ग्रुप को काम दिया गया है। यह ग्रुप ***क्यूसीए*** की प्रश्नावली पर स्कूलों से मिली प्रतिक्रियाओं का आंकडों पर आधारित वर्गीकरण करेगा। ये प्रतिक्रियाएं विभिन्न मुख्य चरणों में उद्देश्यों और प्राथमिकताओं पर दिए गए विचारों से संबंधित हैं।

स्कूली पाठ्यचर्या लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित हो, यह विचार इस आलेख से ही नहीं जन्मा है। पच्चीस साल पहले पैट्रिशिया व्हाइट ने ऐसी ही तार्किक, सशक्त दलील दी थी जो आंशिक तौर पर इस आलेख की दलील से मिलती-जुलती है। स्रोत : आर.एस.पीटर्स द्वारा सम्पादित 'The Philosophy of Education, Oxford: Oxford University Press 1973.' में छपा 'Education, Democracy and the Public Interest'। उन्होंने इन विचारों को और विस्तार दिया एक पुस्तक में - 'Beyond Domination : An Essay in the Political Philosophy of Education, London : Routledge & Kegan Paul, 1983. ◆